उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल

सिविल पुनरीक्षण सं0– 60 / 2010

सगीर और अन्य.....निगरानीकर्ता।

बनाम

मुमताज और अन्य.....प्रति उत्तरदाता।

उपस्थितः–

श्री नागेश अग्रवाल, निगरानीकर्ता के अधिवक्ता।

श्री सिद्धार्थ सिंह, प्रति उत्तरदाता के अधिवक्ता।

<u>निर्णय</u>

उपस्थित माननीय रवींद्र मैथानी..... जे.

वर्तमान पुनरीक्षण निष्पादन वाद सं. 03 / 2003 (संक्षेप में, ''निष्पादन मामला'') मोहम्मद उमर बनाम मंगता और अन्य और प्रकीर्ण वाद सं0 03 / 2008 मुमताज और अन्य बनाम सगीर और अन्य (संक्षेप में, ''विविध मामला'') के मामले में अपर जिला जज / प्रथम फास्ट ट्रैक कोर्ट रूडकी के द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.11.2010 के विरुद्ध योजित की गयी है। प्रश्नगत आदेश में एक प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 28 (3) विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 के अंतर्गत डिक्रीधारक के द्वारा निष्पादन वाद मे रकम जमा करने हेतु समयसीमा विस्तारित करने हेतु दिया गया था जिसे खारिज कर दिया गया है। निष्पादन मामले में, निर्णीत ऋणी द्वारा अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र इस आधार पर दायर किया गया था कि चूंकि डिक्री धारक ने डिक्री द्वारा निर्देशित निर्धारित समय के भीतर राशि का भुगतान नहीं किया है, इसलिए डिक्री रद्द हो गयी, इस प्रार्थना पत्र के आधार पर, प्रकीर्ण मामले की कार्यवाही शुरू की गई थी और आक्षेपित आदेश द्वारा निर्णीत ऋणी के प्रार्थना पत्र को अनुज्ञात किया गया था।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और पत्रावली का अवलोकन किया गया।

3. निगरानीकर्ता (इसके पश्चात् डिक्री धारक के रूप में संदर्भित) के पूर्वहितधारी मोहम्मद उमर द्वारा प्रतिउत्तरदाता (इसके पश्चात निर्णीत ऋणी के रूप में संदर्भित) के पूर्व हित धारी मंगता के विरूद्ध अनुबंध पत्र दिनांक 04.03.1987 जिसके द्वारा निर्णीत ऋणी, डिक्रीधारक को 55 हजार रू0 में सम्पत्ति बेचने का करार किया था। यह वाद अपर सिविल जज रूडकी के न्यायालय में मूल वाद सं0 71 / 1989 मोहम्द उमर बनाम मंगता (संक्षेप में वाद) में पंजीकृत हुआ था। यह दिनांक 08.05.1990 को एकपक्षीय रूप से निर्णीत हुआ। निर्णीत ऋणी को

निदेर्शित किया गया था कि वह डिक्रीधारक से दस हजार रू0 लेकर विक्रय विलेख निष्पादित करे अथवा डिक्रीधारक न्यायालय की मदद से विक्रय विलेख निष्पादित कराने हेतु स्वतंत्र होगा। एक पक्षीय आदेश दिनांक 08.05.1990 को आदेश 9 नियम 13 सि0प्र0सं0 (संक्षेप में, संहिता) में अपास्त कराने हेतु निर्णीत ऋणी द्वारा प्रयास किया गया, परंतु वह स्वीकृत नहीं हुआ। अपील में भी मामला असफल रहा।

4. डिक्री धारक ने निष्पादन वाद योजित किया। प्रारंभिक स्तर पर निर्णीत ऋणी के द्वारा संहिता की धारा 47 के अंतर्गत कुछ आपत्तियां दाखिल की गयी जो निष्पादन न्यायालय के द्वारा स्वीकृत की गयी थी लेकिन तत्पश्चात पुनरीक्षण में अपास्त कर दी गयी। मामला आगे चला। निष्पादन मामले में, डिक्री धारक ने अधिनियम की धारा 28 (3) के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र डिक्री के अनुसार न्यायालय में दस हजार रू0 जमा करने के लिए समय याचित करने के लिए दाखिल किया। आक्षेपित आदेश के द्वारा इस प्रार्थना पत्र को अस्वीकार कर दिया गया है।

5. निष्पादन मामले में ही निर्णीत ऋणी ने अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत इस आधार पर एक प्रार्थना पत्र दायर किया कि डिक्री धारक ने डिक्री के 20 वर्षों के बाद भी निर्णीत ऋणी को डिक्री के अंतर्गत राशि का भुगतान नहीं किया था इसलिए अनुबंध रद्द कर दिया गया है। निर्णीत ऋणी के इस प्रार्थना पत्र को प्रकीर्ण वाद के रूप में दर्ज किया गया था और स्वीकृत हुआ।

6. निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा बहस में केवल दो तर्क उठाये गये जो निम्नलिखित हैंः–

(i) अधिनियम के धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र पर निष्पादन न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता है तथा केवल उस न्यायालय में वाद लाया जा सकता है जिसने वाद में निर्णय किया हो। यह तर्क भी दिया गया है कि चूंकि तत्काल मामले में, अधिनियम के धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र निष्पादन न्यायालय में दायर किया गया था, इसलिए यह अवैध है और यह आक्षेपित आदेश को दूषित करता है। अपने तर्कों के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने रमनकुट्टी गुप्तन बनाम अवारा, ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1619 के मामले में पारित निर्णय पर भरोसा किया। निर्णय के पैरा 7 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है किः–

''7. इसके बाद प्रश्न यह उठता है कि क्या यह मूल वाद के स्तर पर होना चाहिए या निष्पादन स्तर पर। ाधारा यह इंगित करती है कि यह ''एक ही वाद में'' होना चाहिए। इसका अर्थ स्पष्ट रूप से वाद में ही होगा न कि निष्पादन कार्यवाही में। यह सम्यक रूप से स्थापित विधि है कि विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पारित करने के बाद, न्यायालय का कुछ अधिकार क्षेत्र

समाप्त नहीं होता है डिक्री पारित होने के बाद भी न्यायालय डिक्री पर नियंत्रण रखती है। न्यायालय के लिए यह खुला विकल्प था कि वह अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत या तो समय बढा सकती है या संविदा को खण्डित कर सकती है जैसा कि दावा किया गया है।

चूँकि निष्पादन प्रार्थना पत्र उसी न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है जिसमें मूल वाद दायर किया गया था, अर्थात् प्रथम बार के न्यायालय द्वारा प्रार्थना पत्र को निष्पादन स्तर पर विचार करने के बजाय, इसे मूल वाद के स्तर पर एक अंतर्वर्ती प्रार्थना पत्र के रूप में भी माना जाना चाहिए था और कानून के अनुसार निपटाया जाना चाहिए था। इस दृष्टिकोण से, हम महसूस करते हैं कि बॉम्बे उच्च न्यायालय का निर्णय कानून को सही ढंग से निर्धारित करता है और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय सही नहीं है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने कानून के अनुसार इससे निपटने के लिए इसे मूल वाद के स्तर में स्थानांतरित करने के बजाय, इसे निष्पादन स्तर पर मानते हुए प्रार्थना पत्र को खारिज करना सही नहीं है।''

(ii) अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र परिसीमा से परे दायर किया गया था, क्योंकि परिसीमा अधिनियम, 1962 की धारा 137 (संक्षेप में, ''परिसीमा अधिनियम'') को देखते हुए ऐसे मामलों में परिसीमा तीन साल होगी। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **कांतमनेनी वेंकटेश्वर राव बनाम मेका वेंकटेश्वर राव, 1993 ए. एल. टी. 480** के मामले में विश्वास व्यक्त किया है। इस मामले में, माननीय आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ यह अभिनिर्धारित किया है कि–

''संविदा को रद्द करने के लिए प्रार्थना पत्र दायर करने की परिसीमा, परिसीमा अधिनियम की धारा 137 के अंतर्गत तीन साल है।''

7. दूसरी ओर, निर्णीत ऋणी के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा यह कहा गया है कि अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र निष्पादन न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकता है जिसे अग्रेत्तर उस न्यायालय में अंतरित किया जा सकता है जिसने डिक्री पारित की थी। यह भी कहा गया है कि इस त्रुटि को ठीक करने के लिए, मामले को प्रतिप्रेषित किया जा सकता है लेकिन, निर्णीत ऋणी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि अधिनियम की धारा 28 (3) के अंतर्गत डिक्रीधारक के द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र को भी खारिज कर दिया गया है और उस आदेश को कही चुनौती नहीं दी गई है। इसलिए, डिक्री निष्पादन योग्य नहीं रह गयी है। यह तर्क दिया गया है कि वास्तव में, इस वस्तुस्थिति में हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

8. वास्तव में, निगरानीकर्ता ने आदेश के उस भाग को ही चुनौती दी गयी है, जिसके द्वारा निर्णीत ऋणी के द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र अंतर्गत अधिनियम के धारा 28 (1) के प्रार्थना पत्र को अनुमति दी गई थी जैसा कि आक्षेपित आदेश में उल्लेख किया गया है कि डिक्री धारक द्वारा अधिनियम की धारा 28 (3) के अंतर्गत दायर प्रार्थना पत्र को भी खारिज कर दिया गया है,

जिसके द्वारा वह डिक्री में निर्धारित राशि जमा करने के लिए कुछ समय प्राप्त करना चाहता था।

9. अधिनियम की धारा 28 निम्न प्रकार हैः–

न्यायालय –

''28. सीवर सम्पत्ति के विक्रय या पट्टे पर दिये जाने के लिए ऐसी संविदाओं का, जिनका विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री की जा चुकी हो, कतिपय परिस्थतियों में विधारान (1) जहां किसी वाद में स्थावर संपत्ति के विक्रय या पट्टे पर दिए जाने की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री की जा चुकी हो और क्रेता या पट्टेदार डिक्री द्वारा अनुज्ञात कालावधि के भीतर या ऐसी अतिरिक्त अवधि के भीतर, जिसे न्यायालय अनुज्ञात करे, विक्रय राशि या अन्य राशि जिसे देने के लिए न्यायालय ने उसे भुगतान करने का आदेश दिया हो, न दे, वहां विक्रेता या पट्टेदार उसी वाद में जिसमें डिक्री की गई है संविदा के विखंडित किये जाने का आवेदन कर सकेगा और ऐसे आवेदन पर न्यायालय आदेश द्वारा संविदा को, या तो वहां तक जहां तक कि व्यतिक्रम करने वाले पक्षकार का संबंध है या सम्पूर्णतः जैसा भी मामले में न्याय द्वारा अपेक्षित हो, विखंडित कर सकेगा।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन संविदा विखंडित कर दी गयी हो वहां न्यायालय–

(क) यदि क्रेता या पट्टेदार ने संविदा के अधीन संपत्ति का कब्जा प्राप्त कर लिया है, तो न्यायालय उसे निदेश देगा कि वह विक्रेता या पट्टेदार को कब्जा प्रत्यावर्तित कर दे और

(ख) ऐसे सब भाटको और लाभों का संदाय जो सम्पत्ति के संबंध में उस तारीख से जिसको क्रेता या पट्टेदार द्वारा ऐसा कब्जा अभिप्राप्त किया गया था, विक्रेता या पट्टेदार को कब्जे के प्रत्यावर्तन तक प्रोद्भूत हुए हो, विक्रेता या पट्टेदार को किए जाने के लिए और यदि मामले में न्याय द्वारा ऐसा अपेक्षित हो, तो संविदा के संबंध में अग्रिम धन या निक्षेप के तौर पर क्रेता या पट्टेदार द्वारा दी गयी किसी राशि के प्रतिदाय के लिए निदेश दे सकेगा।

(3) यदि क्रेता या पट्टेदार ऐसे क्रय राशि या अन्य राशि जिसको उसे उपधारा (1) में निर्दिष्ट अवधि के भीतर संदाय करने का आदेश दिया गया है, तो न्यायालय, उसी वाद में किए गए प्रार्थना पत्र पर, क्रेता या पट्टेदार को ऐसी अतिरिक्त अनुतोष दिला सकेगा जिसके अंतर्गत समुचित मामले में निम्नलिखित में ये सब या कोई भी अनुतोष आता है, अर्थात् –

(क) विक्रेता या पट्टेदार द्वारा उचित हस्तांन्तर पत्र या पट्टे का निष्पादनयः

(ख) ऐसे हस्तांतरण पत्र या पट्टा के निष्पादन पर संपत्ति के कब्जे, या विभाजन और पृथक कब्जे का परिदान।

(4) ऐसे किसी अनुतोष के बारे में, जिसका इस धारा के अधीन दावा किया सके, कोई पृथक वाद जो यथास्थिति, विक्रेता, क्रेता, पट्टेदार या पट्टाकर्ता की प्रेरणा पर लाया गया हो, ग्राह्य नहीं होगा।

(5) इस धारा के अधीन की किसी भी कार्यवाही के खर्च न्यायालय के विवेकाधिकार में होंगे।''

10. धारा 28 (1) के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि, वास्तव में, न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री पारित करने के बाद भी अनुबंध को रद्द करने या अधिनियम की धारा 28 (3) के अंतर्गत कोई आदेश ऐसी डिक्री के संदर्भ में पारित कर सकता है।

11. रमनकुट्टी (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई प्रार्थना पत्र अधिनियम की धारा 28(1) के अंतर्गत के निष्पादन न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है, तो डिक्री पारित करने वाले न्यायालय को अंतरित किया जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि निष्पादन न्यायालय और डिक्री पारित करने वाला न्यायालय एक ही न्यायालय हो। ऐसे मामलों में, भले ही अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र निष्पादन स्तर पर दायर किया जाता है, इसे मूल स्तर पर एक प्रकीर्ण वाद के रूप में लिया जा सकता है और तदनुसार निर्णय पारित किया जा सकता है। वर्तमान मामले में वाद को अपर सिविल न्यायालय द्वारा डिक्री किया गया था जबकि निष्पादन वाद का अंतिम निपटारा दिनांक 27.11.2010 (आक्षेपित आदेश द्वारा) द्वारा किया गया था। डिक्री धाराक की तरफ से यह कहा गया है कि वास्तव में प्रारंभिक स्तर पर जिस न्यायालय ने डिक्री पारित की थी निष्पादन वाद वहीं फाईल किया गया था। लेकिन बाद में, वह अतिरिक्त जिला न्यायालय फास्ट ट्रैक कोर्ट के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया। वास्तविकता यह है कि अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत उस न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया था, जिस न्यायालय ने डिक्री पारित नहीं की थी।

12. निर्णीत ऋणी के द्वारा अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र को यदपि एक प्रकीर्ण वाद के रूप में दर्ज किया गया है, परंतु यह निष्पादन वाद में तय किया गया था। यह उस न्यायालय द्वारा तय नहीं किया गया है जिसने आदेश पारित किया था। यह एक अनियमितता है। निश्चित रूप से इसका प्रभाव बाद के स्तर पर देखा जाएगा जिससे आदेश को रद्द किया जा सके या कोई अन्य आदेश को पारित करने के लिए मामले को प्रतिप्रेषित किया जा सके।

13. परिसीमा के संदर्भ में भी बहस प्रस्तुत की गयी है। कांतामेनेनी वेंकटेश्वर राव (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि ऐसे मामलों में, परिसीमा अधिनियम की धारा 137 के अंतर्गत परिसीमा तीन वर्ष होगी। निर्णीत ऋणी द्वारा योजित अपील पर 13.11.1992 को निर्णीत हुई थी। तीन साल की परिसीमा, किसी भी परिस्थिति में, 13.11.1992 से प्रारंभ होगी, परंतु अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र 30.09.2008 को अपील में निर्णय की तारीख से लगभग 16 वर्षों के बाद प्रस्तुत

किया गया था। यह निश्चित रूप से कालबाधित है। इसका प्रभाव यह है कि अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र को केवल परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए था। इस आधार पर आक्षेपित आदेश को उस हद तक अलग रखना चाहिए जब तक वह निर्णीत ऋणी द्वारा दायर अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र की अनुमति देता है।

14. डिक्री धारक ने अधिनियम की धारा 28 (3) के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र भी दायर किया, जिसमें डिक्री के अंतर्गत राशि जमा करने की अनुमति मांगी गई थी तथा अनुमति देने से इस आधार पर इंकार कर दिया गया था कि डिक्री 08.05.1990 को पारित की गई थी, जिसके खिलाफ, संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत पारित आदेश को चुनौती देने के साथ एक अपील भी की गई थी जो 13.11.1992 को निर्णीत हुई थी और निष्पादन मामला दायर किया गया था। अधिनियम की धारा 28 (3) के अंतर्गत यह प्रार्थना पत्र डिक्री धारक द्वारा 02.02.2010 को दायर किया गया था। अपील में फैसला सुनाए जाने के लगभग 18 साल हो चुके हैं।

15. प्रेम जीवन बनाम के0एस0 वेंकट रमन और अन्य (2017) 11 एससीसी 57, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामले में भले ही निर्णीत ऋणी अनुबंध ा को निरस्त कराने के लिए अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत कोई प्रार्थना पत्र दायर नहीं करता है, डिक्री धारक द्वारा अपने भाग का अनुपालन न करने के कारण डिक्री अप्रवर्तनीय हो जाती है। निर्णय के पैरा 10 में, माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की हैः–

''10. उपर्युक्त परिस्थितियों में, डिक्री–धारकों, प्रतिवादियों की ओर से यहां यह दलील दिया गया है कि जब तक निर्णीत ऋणी विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 28 के संदर्भ में अनुबंध/संविदा को रद्द करने की मांग नहीं करता है, तब तक डिक्री में बकाया जमा करने की अवधि समाप्त होने के बावजूद निष्पादन योग्य बनी हुई है, जिसमें डिक्री–धारकों की ओर से ब्याज का भुगतान करने का एकमात्र दायित्व है, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।''

16. अधिनियम की धारा 28 (3) के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र उस न्यायालय में भी दायर किया जा सकता है जिसने डिक्री पारित की थी इस मामले में ऐसा नहीं किया गया है। अब, तथ्य यह है कि डिक्री धारक ने दिए गए समय के भीतर डिक्री के अंतर्गत धन जमा नहीं किया था या उसने डिक्री के अंतर्गत धन जमा करने के लिए उस न्यायालय से समय बढ़ाने की मांग नहीं की थी, जिसने डिक्री पारित की थी। डिक्री धारक ने निष्पादन न्यायालय से पैसे जमा करने के लिए समय मांगा था जो जिसे खारिज कर दिया गया था। इसलिए, प्रेम जीवन (उपर्युक्त) के मामले में दिये गये निर्णय को देखते हुए, डिक्री अप्रवर्तनीय हो गई है।

17. वर्तमान मामले में इस न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया है कि अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र निष्पादन न्यायालय द्वारा तय किया गया है। यह एक अनियमितता है क्योंकि रमनकुट्टी (उपर्युक्त) के मामले में दिये गये निर्णय को देखते हुए, यदि मूल न्यायालय और निष्पादन न्यायालय समान हैं, तो निष्पादन न्यायालय ने प्रार्थना पत्र को मूल न्यायालय की प्रास्थिति में लिया होगा और इस पर निर्णय लिया होगा। वाद में प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र पर निर्णय लिया जाना चाहिए था। डिक्री पारित करने वाले न्यायालय को विधि के अनुसार निर्णय पारित करने के निर्देश के साथ अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र को निष्पादन न्यायालय में प्रतिप्रेषित कर इस अनियमितता को ठीक किया जा सकता था, लेकिन ऐसा नहीं किया जा सका है क्योंकि प्रार्थना पत्र स्वयं में कालबधित था। इसलिए, निर्णीत ऋणी के द्वारा योजित अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र को स्वीकार किये जाने की सीमा तक आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप किये जाने योग्य है। अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत निर्णीत ऋणी के द्वारा योजित प्रार्थना पत्र खारिज किये जाने योग्य है।

18. इस न्यायालय ने यह भी धारित किया है कि डिक्री अप्रवर्तनीय हो गई है क्योंकि डिक्री धारक के द्वारा डिक्री के अंतर्गत राशि जमा नहीं की थी। इसलिए, निर्णीत ऋणी द्वारा दायर अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र के निरस्त होने के बाद भी, मूल तथ्य में, कोई परिवर्तन नहीं होता है। डिक्री अब भी अप्रवर्तनीय बनी हुई है।

19. उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए, न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष देता हैः—

(1) आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2010 को इस सीमा तक अपास्त किया जाता है कि यह निर्णीत ऋणी द्वारा योजित अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र की अनुमति देता है। अधिनियम की धारा 28 (1) के अंतर्गत निर्णीत ऋणी द्वारा येाजित प्रार्थना पत्र को खारिज किया जाता है।

(2) वाद में पारित डिक्री अभी भी अप्रवर्तनीय बनी हुई है क्योंकि डिक्री धारक ने डिक्री के अधीन धनराशि जमा नहीं की थी।

(3) आक्षेपित आदेश के उस भाग को बरकरार रखा जाता है जो निष्पादन मामले को खारिज करता है।

(4) तदनुसार वर्तमान निगरानी निस्तारित की जाती है।

(रवींद्र मैथानी, जे।)

13.08.2021